

	Think India (Quarterly Journal) ISSN: 0971-1260 Vol-23, Special Issue-03 in collaboration with Indira Gandhi Government Girls Degree College, Rae Bareli, -229001, Uttar Pradesh, India Sponsored by Dept. of Higher Education , Govt. of U.P.	
---	---	---

NATIONAL SEMINAR ON YOGA FOR WELLNESS AND POSITIVE HEALTH
14th - 15th December, 2019 (Saturday-Sunday)

;kx lex fodk l d ifji{; e

डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित
एसो०प्रो० संस्कृत विभाग
वी०एस०एस०डी० कालेज, कानपुर

सारांश

आज जनसंख्या वृद्धि एवं प्रगति की दौड़ में अंधा हुआ जनमानस अनेकानेक रोगों एवं अन्य अनेक समस्याओं से ग्रसित है। व्यक्तित्व विकास पतनोन्मुखी है। हर प्राणी विभिन्न प्रकार के तनावों, झंझटों एवं समस्याओं के साथ जीवन यापन करने के लिए मजबूर है। बालक किशोरावस्था तक आते-आते अवसाद की स्थिति में आ जाता है। मानव संस्कार, सभ्यता नैतिकता, परोपकारिता यहां तक कि मानवता से कोसों दूर होता जा रहा है। चारित्रिक और नैतिक पतन बड़ी तेजी से अपना साम्राज्य स्थापित करता जा रहा है। इस विषम परिस्थिति से बाहर कैसे आया जाये यह विचारणीय बिन्दु है। हर प्राणी स्वस्थ, सक्षम और संस्कारवान कैसे रहे? इसके लिए स्थायी समाधान की परमावश्यकता है।

भारतीय मनीषियों ने सतत् चिन्तन, मनन और अध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से मानव जीवन के हितार्थ अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों के पठन-पाठन, चिन्तन एवं मनन के द्वारा ही व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव है। यद्यपि तकनीकी युग में पाश्चात्य जगत् समृद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर भी पौर्वात्य 'योग' की ओर उन्मुख हुआ है। पाश्चात्य देशों को 'योग' की आवश्यकता क्यों हुई? इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि सम्पूर्ण जगत् विभिन्न विभीषिकाओं से घिरा हुआ है। वह भी स्वस्थ सक्षम एवं सम्पन्न जीवन जीना चाहता है। इन समस्याओं के समाधान में योग ही पूर्ण सक्षम साधन है। व्यक्ति का मन प्रगति की चकाचौंध के कारण नित नवीन वस्तुओं के संग्रह की कामना उत्पन्न करता है। जिससे मन सदा वहीं उलझा रहता है। मन जितना उलझता जायेगा उतनी ही बैचेनी अधिक बढ़ती जायेगी। मन को शान्त करने के लिए योग की आवश्यकता है।

वास्तव में योग एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिससे मन एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। मानव के सभी शारीरिक अंगों के स्वस्थ संचालन, असाधारण स्फूर्ति सकल रोगों के निदान द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण का वैधानिक विधि-विधान इत्यादि योग की महिमा है—

;kxL; iFke }kj/ okM-निरोधेऽपरिग्रहः।
fujk'kk p fujhgk p fuR;edkUr'khyrkAA

योग का प्रथम द्वार संयमित वाणी, धन संचय न करना, लौकिक पदार्थों की आशा का परित्याग करना, और कामनाओं का परित्याग करना तथा एकान्त सेवन है। योग द्वारा ही मानव का समग्र विकास किया जाना सम्भव है।

परिचय

विश्व का यह पुण्यमय देश भारत सदा से प्रकृति रूपी नटी का मनोहरी रङ्गशाला है। प्रकृति ने स्वयं उसे सज्जित करके अत्यधिक शोभा सम्पन्न कर दिया है। इसके उत्तर भाग में बर्फ से आच्छादित पर्वतराज हिमालय है जिसकी विशाल गगनचुम्बी शिखर श्रेणियाँ विश्व को आध्यात्मिक प्रगति का परिचय कराती हैं। दक्षिण भाग में नीलाभामय नीलाम्बुधि की चपल तरंगे हिमालय के चरणों को प्रक्षालित करती हुई हिमालय की शोभा को और बढ़ा देती हैं। पश्चिमी भाग में अरब सागर चंचल लहरों से प्रवाहवान है तथा प्राची में बंगाल की श्याम खाड़ी शोभा को द्विगणित करती है। मध्यभाग में गंगा जमुना की निर्मल स्वच्छ एवं पारदर्शी धाराएं इसे शस्यश्यामल बना रही हैं। भारत का यह बाह्यरूप जितना मनमोहक और रमणीक है उतना ही इसका आन्तरिक रूप शोभामय है। इस सम्पूर्ण विश्व पर सभ्यता एवं मानवता की जननी भारत भू है।

आज जनसंख्या वृद्धि एवं प्रगति की दौड़ में अंधा हुआ जनमानस अनेकानेक रोगों एवं अन्य अनेक समस्याओं से ग्रसित है। व्यक्तित्व विकास पतनोन्मुखी है। हर प्राणी विभिन्न प्रकार के तनावों, झंझटों एवं समस्याओं के साथ जीवन यापन करने के लिए मजबूर है। बालक किशोरावस्था तक आते-आते अवसाद की स्थिति में आ जाता है। मानव संस्कार, सभ्यता नैतिकता, परोपकारिता यहाँ तक कि मानवता से कोसों दूर होता जा रहा है। चारित्रिक और नैतिक पतन बड़ी तेजी से अपना साम्राज्य स्थापित करता जा रहा है। इस विषम परिस्थिति से बाहर कैसे आया जाये यह विचारणीय बिन्दु है। हर प्राणी स्वस्थ, सक्षम और संस्कारवान कैसे रहे? इसके लिए स्थायी समाधान की परमावश्यकता है।

भारतीय मनीषियों ने सतत् चिन्तन, मनन और अध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से मानव जीवन के हितार्थ अनेक सद्ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों के पठन-पाठन, चिन्तन एवं मनन के द्वारा ही व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव है। यद्यपि तकनीकी युग में पाश्चात्य जगत् समृद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर भी पौर्वात्य 'योग' की ओर उन्मुख हुआ है।

पाश्चात्य देशों को 'योग' की आवश्यकता क्यों हुई? इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि सम्पूर्ण जगत् विभिन्न विभीषिकाओं से घिरा हुआ है। वह भी स्वस्थ, सक्षम एवं सम्पन्न जीवन जीना चाहता है। इन समस्याओं के समाधान में योग ही पूर्ण सक्षम साधन है। व्यक्ति का मन प्रगति की चकाचौंध के कारण नित नवीन वस्तुओं के संग्रह की कामना उत्पन्न करता है। जिससे मन सदा वहीं उलझा रहता है। मन जितना उलझता जायेगा उतनी ही बैचेनी अधिक बढ़ती जायेगी। मन को शान्त करने के लिए योग की आवश्यकता है।

योग भारत वासियों की सर्वप्राचीन और समीचीन सम्पत्ति है। इसी सम्पत्ति से मानव सुखी और निरोगी जीवन यापन कर सकता है। योग विद्या सर्वसम्मत है और मोक्षप्राप्त का एक सुगम साधन है। योग सर्व सत्तावहर और प्रभु से मिलन कराने में भक्ति और ज्ञान का प्रमुख साधन है। प्राचीन ऋषियों, मुनियों के

उत्कृष्ट ज्ञान की अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति में योग ही प्रधान कारण है। दार्शनिकों तथा धर्म प्रचारकों ने योग की महती उपयोगिता को स्वीकार किया और योग का विवेचन अपने-अपने मतानुसार किया। जैन और बुद्ध धर्म तथा संस्कृत ग्रन्थों में योग का विवेचन पर्याप्त मात्रा में है। नाथ-सम्प्रदाय में योग का इतना आदर है कि नाथ सम्प्रदाय को योगी सम्प्रदाय से जाना जाता है महर्षि पतञ्जलि से पूर्व संहिताओं ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में योग का विवेचन सुन्दर ढंग से प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी योग की महत्ता दर्शनीय है। भोज वृत्ति में योग के विषय में कहा गया है—

^;kxu fprL; inu okpk eyi 'kjhjL; p o|duA

योऽपाकरोत तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।”¹

आर्ष मनीषियों ने योग को चार पादों में विभक्त किया है—

(क) समाधि पाद— इसमें समाधि के रूप तथा भेद, चित्त तथा उसकी वृत्ति आदि का वर्णन है।

(ख) साधन पाद— क्रिया योग, क्लेश तथा उसके भेद, क्लेशों के निराकरण के साधन, हेयहेतु हान तथा हानोपाय, योग के अष्टांग योग आदि विषयों का वर्णन है।

(ग) विभूति पाद— धारणा, ध्यान और समाधि के पश्चात योग के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाली विभूतियों का वर्णन है।

(घ) कैवल्य पाद— इसमें समाधिसिद्धि निर्माणचित्त, विज्ञान, निराकरण एवं कैवल्य का निर्णय किया गया है। योग शब्द की व्युत्पत्ति समाध्यर्थक ‘युज्’ धातु से होती है। अतः योग का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—समाधि है। महर्षि पतञ्जलि योग का लक्षण दिया है—

^;kxf'pRrofrfujk/kA**

योग चिन्तवन्तियों का निरोध है।

“सर्वशब्दाग्रहणात्सम्प्रज्ञातोऽपि योग इत्याख्यायते। चित्त हि प्रख्याप्रवृत्ति स्थितिशीलत्वात् f=x.keA iI[;k:iI fg fprRlRro jtlRekH;k lI"V& e'o;fo"K;fi; HkofrA rno तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति। तदेव प्रक्षीणमोहावरणं सर्वतः प्रद्योतमानमनुविद्धं jtkes=;k /keKkuojkX;|'o;kixi HkofrA rno jtky:'keykiiri Lo:iifr"B lRro i#"kkU;rk[;kfrek= /kee?k/kukixi HkofrA rRiji iI[;kufeR;k p{kr /;kf;u%A fpfr'kfDrjifj.kkfeU;ifrIMØek nf'krfo"K;k 'k)k pkuUrK oA lRroxl.kkfredk pi;erk foijhrk food[;kfrfjfrA vrLrL;k fojDr fprR rkefi [;kfr fu#.kf) rnoLFk fprR lLdkjk ix HkofrA l fuchit% lekf/kA u r= fdf¥pRlEiKk;r bR;lEi Kkr% f}fo/k l ;kxf'pRrofrfujk/k bfrAA**²

सर्व शब्द का प्रयोग न किये जाने के कारण सम्प्रज्ञात समाधि भी योग कही जाती है। चित्त प्रकाशशील, चेष्टाशील व स्थैर्यशील होने से त्रिगुणात्मक है। प्रकाशशील चित्तसत्त्व रजोगुण एवं तमोगुण से लब्ध संसर्ग होकर विषयों और ऐश्वर्य का इच्छुक हो जाता है। और जब चित्तसत्त्व तमोगुण से अधिक विंध

जाता है तब वह अधर्म, अज्ञान, अनैश्वर्य तथा अवैराग्य में लीन हो जाता है और जब वही चित्तसत्त्व तमोगुण से उत्पन्न मोह से रहित होकर सब ओर से प्रकाशित हुआ जब कभी रजोगुण की मात्रा से स्पृष्ट हो जाता है। तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवम् ऐश्वर्य की ओर मुड़ जाता है। वही चित्त सत्त्व जब उसे रजोगुण की मात्रा रूपी मल के सम्पर्क से रहित होता है तब वह अपने शुद्ध, सात्त्विक रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, और बुद्धि तथा पुरुष के अलगाव या विवेक के ज्ञान रूप का रहता है, और धर्ममेघ समाधि की स्थिति तक पहुँचने वाला होता है। इसी को योगी जन पर—प्रसंख्यान कहते हैं। पुरुष तत्त्व अपरिणामी, निष्क्रिय द्रष्टा, शुद्ध एवं अनन्त है। यह विवेकख्याति इससे सदैव पृथक् एवं सत्त्वगुणात्मक है। इसलिए इसके प्रति भी विरक्त चित्त इस विवेक ख्याति को निरुद्ध करता है। इस स्थिति में स्थित चित्त संस्कारमात्रावशिष्ट रह जाता है। इसको निर्बीज समाधि कहते हैं। इस स्थिति में चित्त को किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता है, इसलिए इसे असम्प्रज्ञात योग कहते हैं। अतः चित्तवृत्तिनिरोध लक्षण वाला यह योग सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात दो प्रकार का होता है।

योग विद्या का प्रारम्भ कब हुआ और चित्तवृत्तियों का निरोध और आत्म संयम के व्यवहार में अभ्यास कब से प्रारम्भ हुआ? प्राचीन वाङ्मय में योग के बीजाकुरं उपलब्ध हैं जिसका पल्लवन परवर्ती युग के ग्रन्थों में हुआ। वैदिक ऋषि योग की चरमावस्था का अनुभव कर चुके थे, अन्यथा ऐसी रहस्यात्मक एवं आश्चर्यजनक ऋचाओं का सृजन असंभव हो जाता। नासदीय सूक्त तथा वागम्भरायण सूक्त के नेत्रहीन रचयिता दृग्गतमस इस तत्त्व के प्रबल पोषक हैं। [^];kx fo|k ,d ,lh fo|k g| tk lEi.k lEink;k ,o| er&erkUrjk d| i{kikr l| 'kU; ,d loxkgh /ke| g| tk Lo;| vuHko }kjk rRRoIk{kRedkj djuk fl[kkdj eu"; dk vfUre y{; rd igpkrh gA**³ योग मात्र विचारात्मक या कतिपय सिद्धान्तों की विवेचना मात्र नहीं प्रत्युत पूर्णतया क्रियात्मक है। देखा जाये तो मुख्य रूप से योग उद्योग (अभ्यास) वियोग (वैराग्य) संयोग (प्रणिधान) इन तीनों का सम्मिलन है। वैदिक वाङ्मय में योग का वर्णन उपलब्ध है। ऋग्वेद का मंत्र दृष्टव्य है—

[^]_rL; ok df'ku ;kX;fHkK /krLuo jkgfr /kfj f?kLokA**⁴

अथर्ववेद के मंत्र संख्या—10.5.18 में बृहच्चर्य का वर्णन प्राप्त है और प्राणतत्त्व हृदय पुण्डरीक इत्यादि का वर्णन योग की उन्नत स्थिति का परिचायक है—

[^]i|.Mjhd| uo}kj| f=fHkx|.kfHkjkORre ;fLeu ;/k{kReUo=|} cãfonk fonA**⁵

शतपथब्राह्मण में वाणी के संयम, सत्य एवं प्राणायान का चित्रण उपलब्ध होता है—

“स जुहोति युज्यतेमनस्त युचतेधिम, इति मनसा po| okpk p ;K| tUorA l ;nk ;|pr| eu bfr rUek ;|ufDr] mr ;|pr| f/k; bfr r}kp| ;ufDrA**⁶

योग कर्मयोग, अध्यात्मयोग, राजयोग इत्यादि के द्वारा मानव का सम्पूर्ण विकास करता है। यजुर्वेद कहता है—

[^]doUuog dekf.k ft tHfo"kpNr | lekA

एवं त्वयि नान्यथेतोऽसि u de| fyl;ri uJA**⁷

कर्मयोग पूर्ण निष्ठा एवं लगन से करते हुए तथा ईश्वर का ही सब कुछ है यह समझकर शास्त्रनियत कर्तव्य कार्यों को करते हुए शतायु जीने की कामना करो।

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण जीवन का समर्पण कर दो। यह जीवन मात्र ईश के लिए है, स्वभोग के लिए नहीं है। कर्मबन्धन से मुक्ति का सच्चा, सरल यही मार्ग है। इस मार्ग से प्रतिकूल गमन पर मानव अज्ञान एवं नाना प्रकार के क्लेशों से घिरा रहता है। अध्यात्म योग की महत्ता का वर्णन करता हुआ कठोपनिषद् कहता है कि हे नचिकेता तुम जीवात्मा को रथ का स्वामी जो उसमें बैठकर चलता है समझो और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथी समझो और चित्तको लगाम समझो। इनको इसी प्रकार मानकर तुम्हारा चित्त अध्यात्मयोग की ओर अग्रसर होगा और तुम अध्यात्मिक विकास करने में सफल होगे। श्वेतश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट वर्णित है कि उन्होंने ध्यान योग के द्वारा देवात्मशक्ति को प्राप्त किया—

^Mr /;ku;kxkuixrk vi';u norkRe'kfDr Loxi.kfuix<keA

; dkj.kkfu fuf[kykfu rkfu] dkykRe;DrkU;f/kfr"BR;d%AA**8

मैत्रायणी उपनिषद् में योग के छः अंगों— 1. प्राणायाम, 2. प्रत्याहार, 3. ध्यान, 4. धारणा, 5. तर्क, 6. समाधि का यत्र तत्र विवरण प्राप्त होता है। महर्षि पतञ्जलि ने योग मार्ग के लिए चित्त प्रसादन आवश्यक बतलाया है। चित्त प्रसादन के अभाव में कर्म योग में प्रवृत्ति असंभव है। इसके कई उपाय बताए हैं। राग, काम—द्वेष इत्यादि, चित्त के मल हैं। इन चित्त के मलों के परिष्कार से ही चित्त प्रसन्न होता है—

^e'=hd#.kkefnrki;{kk.kk I[kn% [ki.;ki.;fo"k;k.kk Hkkouk&

rf'pRr iIknuAA**9

सुखी, दुखी पुण्यात्मा और पापात्मा प्राणियों के सम्बन्ध में मैत्री, करुणा प्रसन्नता एवं उपेक्षा की भावना करने से चित्त निर्मल होता है। उक्त चार प्रकार की भावनाओं में से सुखोपभोगयुक्त सभी जीवों के प्रति मैत्री की भावना करनी चाहिए। दुखी प्राणियों के प्रति करुणा, पुण्यात्मा के प्रति प्रेम और पापात्मा के प्रति उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। जो इस प्रकार की भावनाएं रखता है, उसको सात्त्विक धर्म प्राप्त होता है और धर्म की उत्पत्ति से चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न हुआ चित्त योग के विहित उपायों के माध्यम से सुगमता पूर्वक एकाग्रस्थिरता की स्थिति प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस सम्बन्ध में वर्णन है। चित्तवृद्धि के निरोध को योग कहते हैं। शरीर चित्त एवं इन्द्रियों की शुद्धि से योग की शुद्धि होती है। इनकी शुद्धि के आठ मार्ग बतलाए गये हैं। इन आठ प्रकारों को योग मार्ग या अष्टांग योग कहते हैं। योग के आठ अंग अग्रलिखित हैं। यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—

“यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टवङ्गिन।”¹⁰

इन आठ प्रकार के योग के अंगों का समुचित रूप से नित्य पालन करने से प्राणी की इन्द्रियाँ और चित्त शान्ति होकर कर्म निष्पादन करता है। जिससे जीवन के स्वास्थ्य सम्बन्धी, अर्थ सम्बन्धी आदि क्लेशों से मुक्ति प्राप्त होती है। और वह विकास पथ पर अग्रसर होता है।

वास्तव में योग एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिससे मन एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। मानव के सभी शारीरिक अंगों के स्वस्थ संचालन, असाधारण स्फूर्ति सकल रोगों के निदान द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण का वैधानिक विधि-विधान इत्यादि योग की महिमा है-

^;kxL; iFke }kj okM-निरोधेऽपरिग्रहः।

fujk'kk p fujhgk p fuR;edkUr'khyrkAA**

योग का प्रथम द्वार संयमित वाणी, धन संचय न करना, लौकिक पदार्थों की आशा का परित्याग करना, और कामनाओं का परित्याग करना तथा एकान्त सेवन है। योग द्वारा ही मानव का समग्र विकास किया जाना सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भोजवृत्ति
2. पतञ्जलि योगदर्शन –समाधिपाद सूत्र सं०-2 चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- 3- Indian Philosophy- Dr. Radha Krishnam Part- I Page 26
4. ऋग्वेद- 3.3.6
5. अथर्ववेद-10.8.43
6. शतपथ ब्राह्मण-5.3.11
7. यजुर्वेद- 40.2 तथा ईशावास्योपनिषद-2
8. श्वेताश्वतरोपनिषद्- 1.3
9. पतञ्जलि योगदर्शन –समाधिपाद सूत्र सं०-33 चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
10. योग सूत्र- 2.39